9

प्राथमिक शिक्षक एवं कक्षा-कक्ष - एक चुनौती

अनीता जोशी *

प्राथमिक स्तर पर अध्यापन करने वाला शिक्षक शिक्षा व्यवस्था का सबसे महत्त्वपूर्ण स्तंभ है। कक्षा-कक्ष की चुनौतियाँ उसी के लिए सर्वाधिक होती हैं। परंतु धैर्य, सहानुभूति, स्नेह जैसे समुचित गुणों के यथोचित प्रदर्शन के माध्यम से अध्यापक विद्यार्थियों के प्रति प्रोत्साहन का वातावरण निर्मित कर सकता है। कक्षा-कक्ष की किसी भी प्रकार की चुनौतियों का समाधान करना उसके वश में होता है।

प्राचीन संदर्भों में शिक्षक शैक्षिक प्रक्रिया का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्तंभ था। परंतु बदलते सामाजिक परिवेश में ज्ञानार्जन हेतु कई दृश्य-श्रव्य संसाधनों की भूमिका ने शिक्षक की भूमिका को बदल दिया है। अब भावनात्मक संबंधों की स्थापना हेतु शिक्षक की भूमिका पहले से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। वर्तमान में विद्यार्थी के विद्यारंभ की आयु पाँच वर्ष से घटकर तीन वर्ष रह गयी है। माता-पिता के नौकरी पेशा होने के कारण शहरी सभ्यता के अधिकांश बच्चे तीन वर्ष जीवन के ये अनमोल पल क्रेच में बिताते हैं। जिस कारण माता के रूप में प्रथम शिक्षिका उन्हें प्रायः अनुपलब्ध ही रहती है। भौतिक रूप से आवश्यक समस्त संसाधनों को अभिभावक अपने बच्चे के लिए उपलब्ध तो करवा देते हैं परंतु भावनात्मक विकास हेतु अधिकाधिक समय और प्यार की आवश्यकता होती है। बच्चे के साथ बिताया गया समय और उस पर लुटाया गया प्यार संसाधनों की कमी की भी क्षतिपूर्ति कर सकता है। दूसरी ओर संसाधनों की उपलब्धता के बावजूद माता-पिता द्वारा बच्चे को प्यार न मिलने के कारण उसमें गलत प्रवृत्तियों का विकास हो जाता है। उसके संवेग विकृत हो सकते हैं। उसकी जिज्ञासाएँ असंतुष्ट रह जाती हैं। ऐसे बच्चों के विकास हेतु शिक्षक की चुनौतियाँ बढ़ जाती हैं। प्राथमिक स्तर पर बच्चे में जिज्ञासा की अधिकता के कारण पूछताछ की प्रवृत्ति अत्यधिक होती है। अपने चारों ओर

* *प्रवक्ता*, बी.एड. विभाग, एल.एस.एम.राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय पिथौरागढ़ (उत्तराखंड)

की परिस्थितियों तथा पाठ्यक्रम में सम्मिलित अध्ययन सामग्री के संदर्भ में वे अनेक प्रश्न पूछना चाहते हैं परंतु अध्यापक के लिए उन्हें संतुष्ट करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। व्यवहारिक मृदुता तथा धैर्य की प्रवृत्ति कक्षा-कक्ष की इस परिस्थिति को सँभालने में सहायक है। इसके विपरीत आवेश एवं क्रोध हमेशा के लिए विद्यार्थी की जिज्ञासा भाव का दमन कर देते हैं।

अध्यापक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है- विद्यार्थी की रुचि जागृत करना एवं उसे अधिगम हेतु प्रेरित करना। अधिगम हेतु प्रेरणा देने के लिए विद्यार्थी की रुचि को महत्त्व देना आवश्यक है और रुचि जागृत करने हेतु उनकी जिज्ञासा को तृप्त करते हुए इस प्रवृत्ति को बनाए रखना अति आवश्यक है। प्राथमिक शिक्षा उच्च शिक्षा हेतु नींव का कार्य करती है। अत: शिक्षा की संपूर्ण प्रक्रिया में प्राथमिक शिक्षक की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

प्राथमिक स्तर पर अध्यापक का कार्य **संवेगात्मक विकास** द्वारा विद्यार्थियों को सामाजिक सामंजस्य स्थापित करने योग्य बनाना है। बच्चों के संवेगों में शिष्टता भी इसी स्तर पर उत्पन्न होती है। कक्षा में अध्यापक की व्यवहारिकता तथा कक्षा-कक्ष की परिस्थितियों के प्राप्त होने पर वह उन संवेगों का दमन करने में समर्थ हो जाता है जिन्हें सामाजिक रूप से स्वीकृत नहीं किया जाता है, जैसे-क्रोध, ईर्ष्या, लड़ाई आदि। अध्यापक का व्यवहार तथा विद्यालय का वातावरण उसके संवेगों का परिष्कार करने में समक्ष होते हैं।

आत्मसम्मान की परिभाषा से अनभिज्ञ होने पर भी प्रत्येक बच्चा चाहता है कि शिक्षक उसके आत्मसम्मान को ठेस न पहुँचाए। कक्षा में कम-से-कम अंक आने पर और किसी कार्य में असफल रहने पर यदि उसके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचायी जाती है तो उसके संवेग विकृत होने लगते हैं। अत: अध्यापक के लिए बच्चों को संवेगात्मक विकास में सहायता देना महत्वपूर्ण चुनौती है। इस अवस्था में संवेग अस्थाई होते हैं। परंतु यह वह महत्वपूर्ण अवस्था है, जहाँ संवेगों को स्थिरता प्राप्त होती है। कक्षा में प्रत्येक बच्चे का स्तर समान नहीं होता। कुछ बच्चे बचपन से ही मेधावी होते हैं जबकि कुछ अपनी क्रियाओं में पिछड़ेपन का संकेत देते हैं। लेकिन अध्यापक इस बात के लिए बच्चों को ही दोषी मानते हैं।

यद्यपि यह सर्वविदित है कि बच्चे के विकास में उसके पारिवारिक व सामाजिक वातावरण तथा उसके वंशानुगत गुणों का प्रभाव होता है। बच्चों की पढ़ाई में रुचि जागृत करने हेतु पिछड़े बच्चों के असंतुलित विकास का कारण जानना अध्यापक के लिए अति आवश्यक है ताकि विकास की इस असंतुलित प्रक्रिया के निवारण हेतु प्रयास किए जा सकें। यदि इसके बावजूद पिछड़ेपन में कमी नहीं आती तो इन बच्चों के लिए विशेष प्रयास करना होगा। स्टोन्स (1996) के अनुसार आर्थिक पिछड़ेपन के क्षेत्र में किए जाने वाला अनुसंधान सिद्ध करता है कि ध्यान दिए जाने पर इनकी प्रगति संभव है। शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में सम्मिलित 'केस हिस्ट्री' इसी उद्देश्य से पाठ्यक्रम में

सम्मिलित किए जाते हैं ताकि अध्यापक कक्षा की चुनौतियों को स्वीकार कर सकें।

शिक्षकों की सहानुभूति भी बच्चों के विकास में महत्वपूर्ण है। सहानुभूति का अर्थ है किसी के प्रति कोमल भावना की उत्पत्ति। परंतु कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसे संवेग माना है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक क्रो एवं क्रो उद्धरित करते हुए पाठक, (1996) ने लिखा है कि यह एक प्रकार का संवेगात्मक प्रदर्शन है जिसमें व्यक्ति अपने को दूसरे की स्थिति में रखने का या उसके सुख-दुख की भावनाओं का अनुभव करने का प्रयास करता है।

प्रेरणा के पदानुक्रम सिद्धांत (Hierarchical Theory of Motivation) के अनुसार मनुष्य संसार में किसी का बनना चाहता है या किसी को अपना बनाना चाहता है। यह प्रेरक महत्वपूर्ण है (भटनागर एवं अन्य, 2007)। इससे समाज में सहयोग व सहकारिता को बढ़ावा मिलता है। यदि बच्चे को अध्यापक द्वारा उपेक्षा प्राप्त होती है तो अपने प्रति हीनभावना से ग्रस्त हो जाता है साथ ही उस अध्यापक के प्रति श्रद्धा का भाव नहीं रखता। शिक्षा के प्रति बच्चे का रूख भी बहुत हद तक इस बात पर निर्भर करता है कि शिक्षक का उसके प्रति क्या रवैया है? बच्चे के प्रति उदासीनता मनोबल और नैतिक विकास में अत्यंत बाधक है। उसके मन में लोगों के प्रति अविश्वास और संदेह पनपने लगता है। यही कटुता का बड़ा स्रोत है। सुखोम्लोवस्की, (2007) ने शिक्षण कार्य में अनुभव किया कि यदि बच्चों के सकारात्मक परिणामों के मूल्यांकन के लिए ही अंक दिए जाए तो यह बाधक नहीं होता है। उन्होंने अपने स्कूल में पहली से दसवीं तक की कक्षाओं में बौद्धिक श्रम के सकारात्मक परिणामों को मूल्यांकन करने की प्रणाली अपनायी। माता-पिता को भी समझाया गया कि अंकों का न होना बच्चों का अपराध नहीं है बल्कि उसका संकट है और संकट में उसकी सहायता करनी चाहिए। कम अंक ही सारी बुराई की जड़ है- यहीं से बच्चे माता-पिता को धोखा देने की कोशिश करते हैं। शिक्षक को यह अनुभव करना चाहिए कि उस पर हर छात्र के भाग्य का उत्तरदायित्व है।

शिक्षक को सर्वप्रथम बाल-हृदय की कोमल भावनाओं को समझना चाहिए। इस समझ का स्रोत शिक्षक का उच्च भावनात्मक नैतिक स्तर ही है। प्रत्येक बच्चे में कुछ-न-कुछ मौलिक क्षमता अवश्य होती है। शिक्षा व्यक्ति की मौलिक क्षमता को सृजन के स्तर तक पहुँचाती है। प्राथमिक स्तर का बच्चा सृजन की प्रवृत्तियाँ रखता है। यदि मिट्टी में बैठा है, तो वहीं चित्र उकेरता है। कागज़ हाथ में है, तो मोड़-तोड़ कर आकृति बनाता है यदि कलम हाथ में हो, तो चित्र बनाता है। चित्र देखकर कहानी या कविता लिखना, कहानी के आधार पर चित्र बनाना, समाजोपयोगी उत्पादक कार्य बच्चे की सृजनात्मक अभिव्यक्ति का ही माध्यम है। अध्यापकों के सामने शिक्षण के समय कभी-कभी समस्या आती है कि जब वे कुछ स्पष्ट कर रहे होते हैं तो कुछ बच्चे अपने में ही मस्त होकर किसी दूसरे ही कार्य में लगे होते हैं जिससे शिक्षण कार्य में बाधा उत्पन्न होती है। इसका कारण यही है कि उसकी सृजनशीलता को अभिव्यक्ति

नहीं मिल पाती है। अतः प्राथमिक स्तर पर कला, संगीत व खेल जैसे विषयों को नित्य समय-सारणी में स्थान दिया जाना चाहिए तथा शैक्षिक भ्रमण के कार्यक्रमों को आयोजित किया जाना चाहिए।

प्राथमिक अवस्था का बच्चा बाल्यावस्था में होता है। यह अवस्था कल्पनाओं, तरंगों व मौजों की उम्र मानी जाती है। इस उम्र में कहानियाँ, किस्सों में रुचि का कारण भी यही है। अतः शिक्षक शिक्षाप्रद कहानियों के माध्यम से उसकी भावनाओं की तुष्टि करते हुए गहन कार्यों के प्रति रुचि उत्पन्न कर सकते हैं। (माथुर, 1986)।

इस स्तर पर ही बच्चों का शब्द भंडार विकसित होता है। कठिन शब्दों को लिखना, सीखना, और उनका उच्चारण करना, अँग्रेज़ी विषय के संदर्भ में शब्दों को याद करना बच्चों के लिए एक कठिन काम है। धीमी गति से सीखने वाले विद्यार्थियों के लिए तो यह जटिल कार्य है। अतः इसके लिए रोचक प्रक्रिया अपनाते हुए शिक्षकों को कार्य करना चाहिए। इस संदर्भ में एक प्रयोग सुखोम्लोवस्की, (2007) ने किया। उनके विद्यालय में दूसरी कक्षा के हर छात्र के पास एक डायरी 'शब्दों का पिटारा' थी जिसमें वे ऐसे शब्द लिखते थे जो पुस्तक में उन्हें रोचक लगते थे अथवा जिनका अर्थ वे समझ नहीं पाते थे। ऐसा प्रयोग प्राथमिक स्तर पर सहायक हो सकता है। एक आदत के रूप में यह कार्य करने के कारण बच्चों के पास स्वयं का बनाया एक शब्दकोश होगा तथा बच्चे के लिए शब्दों को सीखना रुचिकर होगा।

बचपन में जो कमी रह जाए उसे वयस्क होने पर पूरा नहीं किया जा सकता। यह नियम आत्मिक क्षेत्रों विशेषतः सौंदर्य बोध पर लागू होता है। व्यक्तित्व विकास के बाद के समय की तुलना में बचपन में सौंदर्य के प्रति ग्रहणशीलता, संवेदनशीलता कहीं अधिक गहरी होती है। प्राथमिक विद्यालय में शिक्षक का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है बच्चों में सौंदर्यबोध विकसित करना।

शिक्षण में सबसे कठिन काम है बच्चों में अनुभव करने की शक्ति को जगाना। कुछ अध्यापक मानते हैं कि यदि बच्चे प्रकृति के समीप हैं तो यह बौद्धिक विकास का प्रबल प्रेरक है। परंतु प्रकृति में ऐसी जादुई शक्ति नहीं है जो बुद्धि, भावनाओं और इच्छा शक्ति पर सीधे-सीधे प्रभाव डालती है परंतु उनके बोध हेतु शिक्षक की आवश्यकता होती है। प्रकृति के निरीक्षण, घटनाओं में कार्य-कारण संबंध स्थापित करना तो शिक्षक ही सिखाता है। शिक्षा का अर्थ यांत्रिक तौर पर अध्यापक द्वारा छात्रों को ज्ञान दिया जाना नहीं है, यह तो सर्वप्रथम मानवीय संबंध है।

चेकोस्लोवाकिया के यान कोमेस्की (1652-1670) जर्मनी के ए.डी. स्टेर्वग (1790-1866) जैसे महान शिक्षकों ने माना है कि प्राथमिक शिक्षकों को सर्वप्रथम बच्चों को पढ़ना, शिक्षा पाना सिखाना चाहिए। इसके लिए शिक्षक को विद्यार्थी में अपने चारों ओर के संसार की परिघटनाओं का निरीक्षण करने, सोचने और अपने विचारों को शब्दों में व्यक्त करने की योग्यता का विकास करना चाहिए। इसे ही 'शिक्षा पाना' सिखाना कहा जाता है

क्योंकि यही ज्ञान प्राप्ति के वास्तविक उपकरण हैं। (सुखोम्लोवस्की, 2007)।

शिक्षण कार्य में सबसे प्रमुख और सबसे महत्त्वपूर्ण है बच्चे को प्रोत्साहन देना। इसके लिए शिक्षक को बच्चों से वास्तविक प्रेम होना चाहिए। बच्चे शिक्षक के इस प्रेम का अनुभव कर सकते हैं। यद्यपि बच्चे स्थितियों को परिभाषित करना नहीं जानते तथापि भावनाओं के संदर्भ में वे वास्तविक व कृत्रिमता में भेद करना जानते हैं। प्राथमिक अवस्था बच्चे के निर्माण की अवस्था होती है। सुखोम्लोवस्की (2007) ने भी माना है कि पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक (7 से 11 साल) की उम्र वे वर्ष हैं जब बच्चों का व्यक्तित्त्व आकार लेता है। इस अवस्था में ही व्यक्तित्त्व का बुनियादी ढाँचा बन जाता है। सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार प्रदर्शन के द्वारा शिक्षक विद्यार्थी को अपने निकट-संपर्क में लाकर उसकी समस्या जान सकता है। सामाजिक गुणों के विकास हेतु भी सहानुभूति को साधन माना गया है। (पाठक, 1996)।

अत: कहा जा सकता है कि प्राथमिक स्तर पर अध्यापन करने वाला शिक्षक शिक्षा व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण स्तंभ है। कक्षा-कक्ष की चुनौतियाँ उसी के लिए सर्वाधिक होती हैं। परंतु धैर्य, सहानुभूति, स्नेह जैसे समुचित गुणों के यथोचित प्रदर्शन के माध्यम से अध्यापक विद्यार्थियों के प्रति प्रोत्साहन का वातावरण निर्मित कर सकता है। कक्षा-कक्ष की किसी भी प्रकार की चुनौतियों का समाधान करना उसके वश में होता है।

संदर्भ साहित्य

भटनागर एवं अन्य, (2006-07) *अधिगमकर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया*, विनय रखेजा द्वारा अमर लाल बुक डिपो, मेरठ(पृष्ठ 144)।

पाठक, पी.डी. (1996) *शिक्षा मनोविज्ञान*, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा (पृष्ठ 84-86)

माथुर, एस. एस. (1986) *शिक्षा मनोविज्ञान*, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा (पृष्ठ 190-425)

सुखोम्लोवस्की, वसीली (2007) *बचपन के दिन*, अरूण प्रकाशन, नयी दिल्ली (पृष्ठ 40,79-88, 107-108)

❑❑❑